



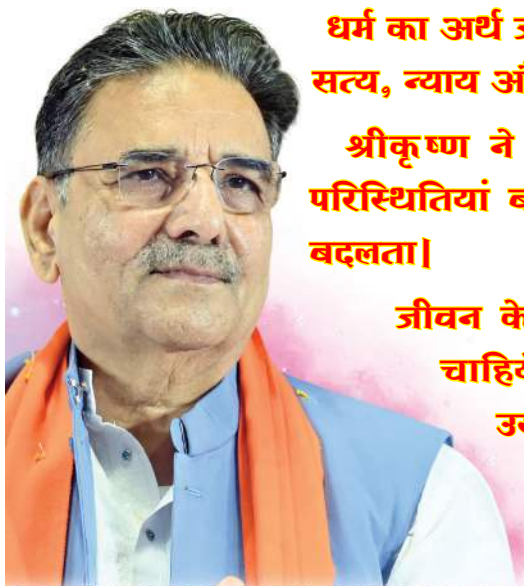
श्रीकृष्ण: जीवन के हर रंग का परम सत्य

सनातन धर्म में यदि कोई चरित्र पूर्ण है तो वे श्रीकृष्ण हैं। वे केवल एक नाम नहीं हैं, बल्कि एक संपूर्ण दर्शन हैं, जिनमें इंद्रधनुष के सभी रंग स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं।

वे बाल्यकाल में माखनचोर हैं, तो युवावस्था में रासबिहारी और कुरुक्षेत्र के मैदान में योगेश्वर, जो अर्जुन के मोह को चीरकर गीता का अमृत वचन सुनाते हैं। यह विरोधाभास ही तो कृष्ण की महिमा है, कि वे बांसुरी भी बजाते हैं और सुदर्शन चक्र भी धारण करते हैं, वे प्रेम के प्रतीक भी हैं और धर्म के रक्षक भी।

गोकुल की गलियों में जो कृष्ण नंद यशोदा के आंगन में खेलते हैं, वे वही परब्रह्म हैं जिनके मुख में यशोदा को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन होते हैं। यह लीला ही तो कृष्ण तत्व की गूढ़ता है, कि परमात्मा स्वयं को इतना सुलभ बना देते हैं कि एक मां अपने पुत्र को दंड देने के लिए रस्सी लेकर दौड़ती है, और वही पुत्र समस्त सृष्टि का आधार है। भागवत पुराण में यह कथा बार बार कहती है कि **ईश्वर दूर नहीं, वे तो घर के आंगन में, गाय के गोठ में, यमुना के तट पर विराजमान हैं, बस देखने वाली दृष्टि चाहिए।**

राधा और कृष्ण का सम्बन्ध इस भक्ति परम्परा में प्रेम के सर्वोच्च आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित है। यह प्रेम शारीरिक आकर्षण नहीं, यह जीवात्मा और परम आत्मा के मिलन की वह लालसा है जिसे शास्त्रों ने विरह और मिलन दोनों में समान रूप से पूजनीय माना है। **राधा की व्याकुलता, उनका विरह, यह दर्शाता है कि भक्ति में प्रतीक्षा भी उतनी ही पवित्र है जितना मिलन, क्योंकि सच्चा प्रेमी प्रतीक्षा में भी प्रियतम का स्मरण करते हुए स्वयं को शुद्ध करता जाता है।**



धर्म का अर्थ जड़ नियमों का पालन करना नहीं है... धर्म वह है जो सत्य, न्याय और लोककल्याण की रक्षा करे।

श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्ध में यही स्पष्ट किया है कि परिस्थितियां बदल सकती हैं, किन्तु धर्म का उद्देश्य कभी नहीं बदलता।

जीवन के कर्मपथ पर मनुष्य को अपनी भूमिका पहचानी चाहिये, अलग-अलग परिस्थितियों और स्थानों पर उसका स्वरूप हो सकता है परन्तु उसका ध्येय एक ही होना चाहिये - सत्य, न्याय और लोक कल्याण...

- सद्गुरुदेव नन्द किशोर जी श्रीमाली



गोवर्धन पर्वत की लीला में कृष्ण ने इन्द्र के अहंकार को चूर करके यह सिखाया कि **सच्ची शक्ति बल में नहीं, विनम्रता और सामूहिक सेवा में है।** जब पूरा ब्रज इन्द्र के प्रकोप से भयभीत था, तब कृष्ण ने अपनी कनिष्ठा अंगुली पर पर्वत उठाकर यह प्रमाणित किया कि **जो अहंकार से रहित होकर धर्म के मार्ग पर चलता है, प्रकृति स्वयं उसकी रक्षा करती है।** यह प्रसंग आज भी हमें स्मरण कराता है कि प्रकृति की पूजा, गौ माता की सेवा, और सामूहिक एकता ही वह शक्ति है जो किसी भी संकट से पार पाने में सक्षम है।

कुरुक्षेत्र में जब अर्जुन मोहग्रस्त होकर गांधीव त्यागने को उद्यत हो जाते हैं, तब कृष्ण जो वचन कहते हैं वे केवल एक युद्ध की प्रेरणा नहीं, समस्त मानव जाति के लिए कर्मयोग का शाश्वत सूत्र हैं। श्रीमद् भगवद्गीता में वे कहते हैं,

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

इस श्लोक में समस्त जीवन दर्शन समाहित है। कृष्ण यह नहीं कहते कि **फल की चिंता मत करो इसलिए कि फल महत्वहीन है, वे यह कहते हैं कि फल की आसक्ति ही वह बंधन है जो कर्ता को कर्म से बांधती है।** जब मनुष्य अपने कर्तव्य को निष्काम भाव से करता है, तब वह कर्म भी योग बन जाता है और यही स्थितप्रज्ञ की अवस्था है।

कृष्ण की एक विशेषता यह भी है कि वे स्वयं को कहीं भी स्थिर नहीं होने देते, वे सदैव गतिशील हैं, चाहे वह मथुरा से

वृंदावन जाना हो, या वृंदावन से द्वारका, या फिर कुरुक्षेत्र के मैदान में सारथी बनकर खड़ा होना। यह गतिशीलता जीवन का भी सत्य है, कि स्थिरता मोह है और गति ही धर्म है, जब तक वह गति कर्तव्य और धर्म के अनुरूप हो।

द्वारकाधीश के रूप में कृष्ण एक कुशल राजनीतिज्ञ, एक न्यायप्रिय शासक और एक स्नेहिल सखा के रूप में प्रकट होते हैं। सुदामा के प्रसंग में जब उनका बचपन का मित्र दरिद्रता में भी उनसे मिलने आता है, कृष्ण स्वयं दौड़कर उसका स्वागत करते हैं, यह दिखाते हुए कि **परमात्मा के लिए भक्त की भावना ही सर्वोपरि है, न कि उसका वैभव या दरिद्रता।**

कृष्ण की लीला हमें यह भी सिखाती है कि **जीवन में विरोधाभासों को स्वीकार करना ही परिपक्वता है।** वे रणछोड़ भी हैं और महाभारत के सूत्रधार भी, वे प्रेमी भी हैं और योगी भी, वे बालक भी हैं और परब्रह्म भी। यह सम्पूर्णता ही सनातन धर्म की वह दृष्टि है जो जीवन को खंडों में नहीं, समग्रता में देखने की शिक्षा देती है।

अंततः कृष्ण भक्ति का सार यही है कि **जीवन के प्रत्येक क्षण में, चाहे वह सुख हो या दुःख, संयोग हो या वियोग, कर्तव्य हो या प्रेम, उस परम तत्व का स्मरण बना रहे।** जैसे गीता में स्वयं कृष्ण कहते हैं कि **जो अंत समय में मेरा स्मरण करते हुए शरीर त्यागता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है, वैसे ही भक्त का सम्पूर्ण जीवन ही उस स्मरण की साधना बन जाना चाहिए।**